THE YOGIC INSIGHT

Vol.: 1
Pp: 32-41

मनोकायिक व्याधिः सन्धिवात के प्रबन्धन में योग चिकित्सीय सिद्धान्त

जन्मेजय

शोधसार

संसार में प्रत्येक व्यक्ति सुख एवं स्वास्थ्य की चाह रखता है और यह मनुष्य जीवन मन, शरीर, इन्द्रियाँ, आत्मा का संयोग है। जिसमें शरीर का आधार उसका कंकालीय (अस्थि) तन्त्र है तथा इस तन्त्र में अस्थियों की गति का माध्यम सन्धियाँ अर्थात जोड़ है। हमारी पेशियों एवं सन्धियों की शक्ति एवं गति के फलस्वरूप ही हम अपने कार्य करने में सक्षम होते हैं। अतः शरीरस्थ अस्थियों, जोड़ों/सन्धियों का स्वस्थ रहना अति आवश्यक है। जिसमें मनोकायिक तन्त्र एवं त्रिदोष सन्तुलन का महत्वपूर्ण योगदान है। लेकिन हमारी विकृत जीवन शैली, त्रिदोष असन्तुलन अर्थात वात वृद्धि, योगाभ्यास की कमी, अपथ्य आहार, यूरिक एसिड़ वर्द्धक आहार, मादक पदार्थों के सेवन, रात्री जागरण, अनिद्रा, नकारात्मक भावनाओं इत्यादि मनोकायिक कारणों से मनोकायिक तन्त्र में गड़बड़ी से हमें अनेक मनोकायिक व्याधियाँ उत्पन्न होती है। ठीक इसी प्रकार मनोकायिक तन्त्र की विकृति से ही कंकालीय तन्त्र में विकृति उत्पन्न होती है, जिसके दुष्परिणाम स्वरूप मनोकायिक व्याधि–सन्धिवात उत्पन्न होती है। जिसके कारण सन्धियों में वेदना, शोथ, जड़ता, कम्पन्न आदि होते हैं तथा उसका शरीर उसे भार लगने लगता है। वह अपने आपको असहाय महसूस करता है।

अतः योग चिकित्सा के द्वारा मनोकायिक तन्त्र को मजबूत एवं सन्तुलित कर स्वयं को मनोकायिक रूप से स्वस्थ बनाया जा सकता है। जिससे वात वृद्धि का निवारण अर्थात त्रिदोष सन्तुलन होकर सन्धिवात जैसी मनोकायिक व्याधियों का प्रबन्धन योग चिकित्सा (यौगिक आहार, षटकर्म, यम–नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान इत्यादि) के माध्यम से हो सकता है। जिससे हमें सुस्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।

मुख्य बिन्दु – मनोकायिक व्याधि, सन्धिवात, योग चिकित्सीय सिद्धान्त

****

शोधार्थी, गुरूकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

मनोकायिक व्याधि

योग एवं आयुर्वेद ग्रन्थों की मान्यता के अनुसार मनुष्य जीवन मन, शरीर (इन्द्रियो सहित) आत्मा का संयोग है[1] अर्थात इनमें से किसी एक का भी अस्वस्थ होना हमारे रोगी होने का परिचायक है। क्योंकि स्वस्थ मन, शरीर, आत्मा ये "त्रिदण्ड" स्वस्थ जीवन के आधार स्तम्भ है।[2] मनोकायिक/मनोशारीरिक/ मनोदैहिक कहने से तात्पर्य मन एवं शरीर का घनिष्ठ सम्बन्ध एक इकाई के रूप में होना है। इसका कारण एकादश इन्द्रियों में मन का उभयात्मक इन्द्रिय होना माना गया है।[3] जो ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों के साथ कार्य में प्रवृत्त होकर सुख एवं दुःख की अनुभूति कराता है।[4] मन एवं शरीर दोनों ही व्याधि/रोग के आश्रय स्थान माने गये हैं।[5] मन का शरीर पर और शरीर का मन पर निश्चित रूप से प्रभाव पड़ता है।[6] किन्तु शरीर की तुलना में मन का मूल्य हजारों गुना अधिक है।[7] योग शास्त्रों के अनुसार भी मनोकायिक व्याधियों की उत्पत्ति में मन की अस्सी प्रतिशत तथा शरीर की बीस प्रतिशत भूमिका मानी गयी है।[8] अतः मन एवं शरीर का परस्पर अवलम्बन होते हुए भी मन का शरीर पर होने वाला प्रभाव, शरीर द्वारा मन पर होने वाले प्रभाव से बहुत अधिक होता है।[9] इससे हमें मनोकायिक भाव की स्पष्टता होती है।

मन एवं शरीर के उभयाश्रित होने से शारीरिक या मानसिक रोगों से ही मनोकायिक व्याधियाँ उत्पन्न होती है।[10] क्योंकि मानसिक कारणों जैसे– उन्माद, तनाव, नकारात्मक भावों इत्यादि से मन तो विकृत होता ही है साथ ही शरीर भी विकृत होता है जिसके कारण अनेक मनोकायिक व्याधियाँ उत्पन्न होती है।[11] जैसे– हृदयरोग, उच्च–रक्तचाप, सिरदर्द, अनिद्रा, गठिया, सन्धिवात इत्यादि।

सन्धिवात

सन्धिवात दो शब्दों सन्धि+वात से बना है। जहाँ मनुष्य शरीर का आधार उसका कंकालीय तन्त्र है और कंकालीय तन्त्र में अस्थियों की गति का माध्यम संधियाँ/जोड़ है। हमारी पेशियों एवं अस्थियों, जोड़ों की शक्ति एवं गति के परिणामस्वरूप ही हम अपने कार्य करने में सक्षम होते हैं।[12] इसीलिए कहा है– "धातवो देहधारणात" अर्थात जिन पदार्थों से शरीर की स्थिति बनी रहती है अर्थात धारण–पोषण होता है[13] वह त्रिदोष[14] वात आदि अन्य

सात धातुएँ– रस, रक्त, मांस, अस्थि आदि मानी गयी है।[15] वात–पित्त, कफ शरीर के दोष तथा रज व तम मन के दोष कहे गये हैं।[16] जब ये दोष– वात, पित्त, कफ एवं रज, तम अपनी साम्यावस्था में होते है तो हम पूर्ण स्वस्थ होते हैं और जब ये विकृत हो जाते है तो हम भी अनेक विभिन्न प्रकार के मनोकायिक रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं।[17]

इसीलिये कहा है कि "दूषयन्ति मनः शरीरं च इति दोषाः" अर्थात ये दोष ही विकृत होकर हमारे शरीर व मन को दूषित करते है।[18] इससे त्रिदोष एवं धातुओं का मनोकायिक तन्त्र से सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है कि जब ये दोष, धातु अपनी प्रकुपित अवस्था में होते है तब हमें मनोकायिक व्याधि उत्पन्न होती है। ठीक इसी प्रकार वात दोष से उत्पन्न सन्धिवात व्याधि वात रोग कहलाती है।[19]

आयुर्वेद के अनुसार महर्षि चरक ने वात का स्थान सम्पूर्ण शरीर को माना गया है तथा महर्षि चरक ने मुख्यतः बस्ति प्रदेश (मूत्राशय), पुरीष प्रदेश (मलाशय), कटि प्रदेश, दोनों उरू (जंघाएँ), दोनों पैर, अस्थियाँ, हड्डियाँ एवं पक्वाशय को वात के प्रमुख स्थान बताये है[20] तथा इनके अतिरिक्त महर्षि वाग्भट्ट ने वात के अन्य दो स्थान कान एवं त्वचा भी बताये है।[21] ये स्थान अपान वायु के कार्य क्षेत्र होने से इनमें वात संचरण करती है तथा यह वायु उचित समय पर शुक्र, आर्तव, मल–मूत्र, स्वेद एवं गर्भ आदि को निष्कासित करने का कार्य करती है।[22] वात के गुणों चल, रूक्ष, शीत, खर एवं सूक्ष्म आदि[23] से शरीर में अनेक क्रियाएँ सम्पादित होती है गतिशीलता, उत्साह (क्रियाशीलता), श्वास–प्रश्वास, शरीर की समस्त चेष्टाएँ (क्रियाएं) मल मूत्र आदि अधारणीय वेग की प्राकृत गति एवं इन्द्रियों के विषयों का ग्रहण करना इत्यादि कर्म वात के कर्म कहे गये हैं[24] और जब यह वात प्रकुपित होकर अप्राकृत अवस्था अर्थात वात वृद्धि का रूप धारण कर लेती है तो इसके गुणों के कुप्रभाव से दूसरे दोष भी दूषित होकर अपने कर्मों से सम्पूर्ण शरीर को दूषित करने लगते है[25] अर्थात त्रिदोष असन्तुलन की समस्या उत्पन्न हो जाती है। कुपित वात अर्थात वात वृद्धि हो जाने से शरीरस्थ कफ पर अधिक प्रभाव पड़ता है जिससे कफ, मांस व अस्थिक्षय (नाश) तक होने लगता है तथा कफ क्षय होने से सन्धियों में शिथिलता आने लगती है।[26] जिसके दुष्परिणाम स्वरूप जोडों में दर्द, चुभन तथा अस्थि (हड्डियों) में पीड़ा होने लगती है।[27] क्योंकि कफ, मांस धातु पृथ्वी तत्त्व की प्रधानता के संगठन पर आधारित है लेकिन

प्रकुपित वात आकाश एवं वायु की प्रधानता से युक्त है जो अपने गुणों रूक्ष चल इत्यादि की वृद्धि के कारण कफ एवं मांस क्षय कर देता है, जिससे कफ, मांस स्थानों (सन्धि, अस्थि) में भी वायु एवं आकाश की वृद्धि/प्रधानता हो जाती है।[28] इसी कारण सन्धियों में पीड़ा की उत्पत्ति होती है जिसे हम सन्धिवात कहते हैं। क्योंकि अस्थिगत वात दोष के कारण ही संधि एवं अस्थि में तीव्र वेदना होती है।[29]

आयुर्वेद के अनुसार वात विकृति से 80 प्रकार के रोगों का होना माना गया है।[30] जिनमें सन्धिवात भी एक रोग है। यह सन्धिवात सम्पूर्ण शरीर की सन्धियों में अलग–अलग रूप से हो सकती है। जैसे–

1. **वात खुड्डता–** इस व्याधि में एड़ी एवं जाँघ की सन्धियों में वात विकृति होने से वेदना उत्पन्न होती है। महर्षि सुश्रुत ने इसे 'वात कण्टक' कहा है।[31]
2. **गुल्फ ग्रह–** इसमें गुल्फ की सन्धियों (Ankle Joints) में जकडन आ जाती है।
3. **जानु विश्लेष–** इस व्याधि में घुटने की सन्धियाँ शिथिल हो जाती है।
4. **ऊरूस्तम्भ–** इसमें ऊरू एंव जानु (घुटने) की सन्धियों में जकडन हो जाती है।
5. **ऊरूसाद–** इस व्याधि में जानु की सन्धियों में ढीलापन आ जाता है।
6. **पृष्ठ ग्रह–** इसमें पीठ की सन्धियाँ जकड़ जाती है जिसे हम पृष्ठवात भी कहते हैं।
7. **मन्यास्तम्भ–** इसमें गर्दन की सन्धियाँ जकड़ जाती है। इसे सर्वाइकल भी कहते हैं।
8. **त्रिकग्रह/त्रिकास्थि–** इसमें रीढ की हड्डी के निचले हिस्से (कूल्हे के पास का भाग) की सन्धियों में वेदना होती है।[32]

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार सन्धिवात को अर्थ्राइटिस कहते हैं जो निम्न रूप में हो सकती है– अतिपाती (एक्यूट अर्थ्राइटिस), अस्थिक्षय (ऑस्टियो अर्थ्राइटिस) वातजनित (रूमेटॉइड अर्थ्राइटिस)

इन सभी प्रकार की अर्थ्राइटिस में भी हमारे शरीरस्थ बड़े जोड़ जैसे टखना, घुटना, कलाई, कूल्हे के जोड़ विशेष रूप से प्रभावित होते हैं तथा ये रोग बच्चों, औरतों, पुरूषों सभी को हो सकते हैं। लेकिन यह अधिकतर पुरूषों एवं महिलाओं को प्रभावित करते हैं तथा पुरूषों की अपेक्षा यह रोग महिलाओं में तीन गुणा होता है। यह लगभग 40–50 वर्ष

की उम्र में देखने को मिलता है।[33] हमारी विकृत प्रतिरक्षा प्रणाली, विकृत जीवन शैली एवं यूरिकएसिड वृद्धि इत्यादि के कारण हमारी सायनोवियल मैम्बरेन (Synovial Membrane) क्षतिग्रस्त हो जाती है जिससे हमारे जोड़ विकृत हो जाते हैं तथा जोड़ की हड्डियों में परसपर घर्षण होने लगता है जिससे जोडों में दर्द एवं उनकी गति में कमी आ जाती है।

लक्षण

जब दूषित वायु सन्धियों में आश्रित होकर कफ को कृश बना देती है तब सन्धि स्थलों में सूजन एवं पीड़ा उत्पन्न होने लगती है। सन्धियों को छूने पर वायु भरी मशक (मक्खी) के समान अनुभव प्रतीत होता है। अतः उन सूजन वाले स्थानों को दबाने पर गड़ढा सा बन जाता है तथा छोड़ने पर पुनः वह गड्ढा शीघ्र भर जाता है। जब शरीरस्थ अंगों को फैलाने सिकोडने की क्रिया होती है तो उस समय सन्धियों में वेदना (पीड़ा/कष्ट) होता है।[34] अर्थात सन्धिवात के कारण हम अपने कार्यों को करने में असमर्थ महसूस करते है तथा दिन–रात पीडा का अनुभव बना रहता है। क्योंकि वायु प्रकोप से सन्धियों में वेदना, जड़ता, संकोच, कम्पन्न इत्यादि बना रहता है। जिसके कारण अतिरिक्त लक्षण जोड़ों में कट–कट की आवाज, सिर–दर्द, कब्जीयत रहना, शरीर में सुस्ती, बैठने, उठने, खडे रहने, चरने–फिरने में कठिनाई, हल्का ज्वर, अपच, अम्ल पित्त, मदाग्नि इत्यादि दिखाई देने लगते हैं। हाथ पैर की उंगलियों की पकड़ में कमी आना, चिड़चिड़ापन, शीघ्र क्रोधित होना, निराशा, अवसाद एवं शारीरिक विकलांगता का अनुभव सन्धिवात की तीव्रता के कारण ही होता है।[35]

कारण

सन्धिवात के अनेक कारण हैं–

आनुवांशिक कारण–

1. वंशानुगत या स्वाभाविक वात प्रकृति होना।
2. विकृत जीवन शैली के कारण– व्यायाम की अत्यधिकता या कमी, असन्तुलित एवं अपथ्य आहार, अधिक वजन उठाना, मादक द्रव्यों का सेवन, मांसाहार, रात्री जागरण, अचानक उष्ण (गर्म) से शीत (ठण्डे) वातावरण में प्रवेश।

3. अन्य व्याधियों जैसे अनिद्रा एवं संक्रमित व्याधियों के कारण वात वृद्धि एवं विषाक्तता उत्पन्न होने से।
4. आहार में कैल्शियम में कमी होने से।
5. अत्यधिक एन्टीबायोटिक्स, एन्टी एलर्जी एवं स्टीरॉइड्स इत्यादि एलोपैथिक दवाईयों के उपयोग से।
6. यूरिक एसिड की मात्रा में वृद्धि होने से।
7. वात कारक, कब्जीय एवं गरिष्ठ भोजन जैसे– भिण्डी, अरबी, उड़द दाल, मिर्च मसालेदार भोजन, समोसा आदि मैदेयुक्त आहार से।
8. भोजन में क्षारीय द्रव्यों की मात्रा कम होना।
9. पक्वाशय तथा धातुपाक से उत्पन्न वासिक विष।
10. सन्धियों पर किसी प्रकार का आघात या अत्यधिक वजन उठाने, घुडसवारी जैसे इत्यादि कार्यों से खिंचाव होना है।[36]
11. आयु– 40–50 वर्ष आयु के बाद सन्धिवात की सम्भावना अधिक होती है। अतः इस अवस्था में सन्धि स्थलों एवं त्रिदोष सम्बन्धी विशेष ध्यान रखें।[37]

योगचिकित्सा–सिद्धान्त

यौगिक जीवन शैली

अपनी विकृत जीवन शैली में सुधार कर यौगिक जीवन शैली को आचरण में लाये। जैसे–

1. नियमित रूप से पथ्य एवं संतुलित भोजन ग्रहण करे तथा रात्रि में शीत वीर्य पदार्थ न ले तथा वातज (वातवर्द्धक) पदार्थों का त्याग करें तथा व्यायाम रहित होने या अतिव्यायाम से बचे।
2. रात्री जागरण का त्याग कर समय पर शयन करें। जिसे गीता में युक्त आहार–विहार एवं युक्त स्वप्न एवं युक्त कर्म करना कहा है।[38]
3. भोजन के उपरान्त मानसिक शारीरिक श्रम न करें तथा स्नान एवं सहवास की प्रक्रिया से बचे। बल्कि बायीं करवट लेटकर विश्राम करें।
4. मादक पदार्थों– धूम्रपान, तम्बाकू, शराब इत्यादि का सेवन वर्जित है।

5. उष्ण वातावरण से अचानक शीत वातावरण में न जायें।

6. नकारात्मक भावों के नियन्त्रण हेतु यम–नियम का पालन करें।[39]

7. सामर्थ्य से अधिक शारीरिक श्रम न करें।

8. एन्टीबायोटिक्स, स्टीरॉयडस, एलर्जी, गर्भ निरोधक गोलियों के अत्यधिक सेवन से बचे तथा रोगोपचार हेतु आयुर्वेदोक्त पद्धति का सहयोग लें।

9. प्रतिदिन अभ्यंग करे (किसी भी गर्म तेल से)

10. गर्म जल से स्नान करें।

11. रोगानुसार प्राकृतिक चिकित्सा का उपयोग करें जैसे– भाप स्नान, मिट्‌टी स्नान, मिट्‌टी पट्‌टी।

षट्‌कर्म चिकित्सा[40]

शरीरस्थ वात दोष की निवृत्ति हेतु तथा जठराग्नि प्रदीप्त हेतु निमन षट्‌कर्मों का उपयोग करें– बस्ति (एनिमा), शंख प्रक्षालन, नौली, अग्निसार, धौति, कपालभाति।

आसनीय चिकित्सा

आसनों के अभ्यास से सन्धि स्थलों की ओर रक्त–संचार वृद्धि होती है जिससे शरीरस्थ वात एवं अम्ल निष्कासन में मदद मिलती है तथा जठराग्नि प्रदीप्ति होती है। फलस्वरूप संधिस्थलों को उचित गति एवं पोषण प्राप्त होता है एवं कब्ज की शिकायत दूर होकर पेट की शुद्धि होती है। अतः निम्न प्रमुख सहायक आसन करे– पवनमुक्तासन, सूक्ष्मव्यायाम, शंखप्रक्षालन के आसन– ताडासन, तिर्यक ताडासन, कटिचक्रासन, भुजंगासन, उदराकर्षण।

पार्श्वीयचक्रासन, त्रिकोणासन, मत्स्यासन, हलासन, उत्तानपादासन, भुजंगासन, वक्रासन, गोमुखासन, मकरासन, मार्जारी आसन, मर्कटासन, वज्रासन, उष्ट्रासन, शलभासन, शवासन इत्यादि।

प्राणायामीय चिकित्सा

वात को सन्तुलित करने तथा पाचन को सबल बनाने हेतु निमन प्राणायाम की अति महत्वपूर्ण भूमिका है– सूर्यभेदन[42], भस्त्रिका[43], उज्जायी[44], नाडी शोधन[45]।

मुद्रा एवं बन्ध चिकित्सा

जठराग्नि प्रदीप्त करने एवं चुल्लिका ग्रन्थि की सक्रियता हेतु उड्डीयान बन्ध, जालन्धर बन्ध, मूल बन्ध, अश्विनी मुद्रा, महामुद्रा, तडागी मुद्रा इत्यादि का अभ्यास उत्तम है।

ध्यान एवं शिथिलीकरण अभ्यास

नकारात्मक भावों जैसे मानसिक तनाव एवं शारीरिक तनाव को दूर करने तथा मन की एकाग्रता एवं शरीर शिथिलता हेतु ध्यान एवं योगनिद्रा[46] जैसे अभ्यास अति महत्वपूर्ण है। अतः प्राणधारणा, जपाजप, अन्तःत्राटक, योगनिद्रा इत्यादि शिथिलीकरण अभ्यास तथा प्रेक्षाध्यान, विपश्यना ध्यान, भावातीत ध्यान, ओंकार इत्यादि का अभ्यास करें।

आहारीय चिकित्सा

पथ्य आहार के बिना रोगावस्था पर नियन्त्रण पाना असम्भव है। अतः सन्धिवात उपचार हेतु अपथ्य आहार अर्थात वात वृद्धि करने वाले एवं कब्ज उत्पन्न करने वाले तथा आमाशयी अम्लता, यूरिक एसिड बढ़ाने वाले आहारीय पदार्थों जैसे राजमा, सरसोंसाग, फूलगोभी, भिण्डी, अरवी, मैदायुक्त भोजन, उडददाल, तले भुने मसालेदार आहार, शीतवीर्य पदार्थ– दही, मूली, छाछ, कढी जीरा, तरबूज इत्यादि सेवन न करे तथा पथ्य आहार जैसे– दलिया, चोकरयुक्त आटा, गाजर, बैंगन, अदरक, लहसुन, मूंग मसूर, सोयाबीन, व वसा रहित दूध, मेवे, सभी फल (खट्टे फलों को छोडकर), मेथी साग, बथुआ, सौंठ, हरी पत्तेदार सब्जियाँ इत्यादि ग्रहण करे।[47]

इन सभी योगांगों के इस विशेष समूह का चिकित्सीय दृष्टि से अभ्यास एवं पालन करे तथा शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वास्थ्य संरक्षण एवं सवर्द्धन प्राप्त करे।

इस प्रकार योग चिकित्सा के माध्यम से मानसिक, शारीरिक शोधन एवं सन्तुलन तथा त्रिदोष सन्तुलन स्थापित कर वात का निदान होने से सन्धिवात जैसे मनोकायिक रोगों का निदान हो सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोगो धारि जीवितम्। चरक संहिता सूत्र स्थान 1/42
2. चरकसंहिता, सूत्रस्थान – 1/46
3. डॉ० राकेश शास्त्री, साँख्यकारिका (ईश्वर कृष्ण विरचिता), पृष्ठ 84
4. साँख्य सूत्र – 2/18
5. शरीरं सत्त्वं च व्याधीनामाश्रयो मतः। चरकसंहिता सूत्रथान – 1/55
6. चरकसंहिता, सूत्रस्थान – 1/48
7. पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, चिकित्सा उपचार के विविध आयाम, वाङ्ग्मय, खण्ड 40, पृष्ठ 315
8. स्वामी निरंजानन्द सरस्वती, घेरण्ड संहिता, पृष्ठ 132
9. स्वामी कुवलयानन्द, योगासन, पृष्ठ 29
10. डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चरक संहिता, पृष्ठ 26
11. डॉ० गोविन्द प्रसाद उपाध्याय, आयुर्वेदीय मानस रोग चिकित्सा, पृष्ठ 72
12. डॉ० सुनील तुली, जोडो का दर्द, पृष्ठ 7
13. डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चरक संहिता, पृष्ठ 25
14. अष्टांगहृदय, सूत्रस्थान – 1/6
15. शरीरधारणाद्धातव इत्युच्यन्ते।। सु०सू० – 14/20
16. चरक संहिता सूत्रस्थान – 1/57
17. (i) डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चरक संहिता, पृष्ठ 25

    (ii) अष्टांगहृदय, सूत्रस्थान – 1/6
18. आचार्य बालकृष्ण, अष्टांगहृदयम्, पृष्ठ 6
19. स्वामी शिवानन्द सरस्वती, योग से रोग निवारण, पृष्ठ 207
20. चरकसंहिता, सूत्रस्थान – 20/8
21. अष्टांगहृदय, सूत्रस्थान – 12/1
22. वही – 12/9
23. चरकसंहिता सूत्रस्थान – 18/49
24. अष्टांगहृदय, सूत्रस्थान – 11/1–3

25. अष्टांगहृदय, सूत्रस्थान – 11/5,6,7
26. वही – 11/15,16
27. वही – 11/18,19
28. आचार्य बालकृष्ण, अष्टांगहृदय, पृष्ठ 238, 239, 247
29. वही, पृष्ठ 225
30. चरक संहिता सूत्रस्थान – 20/10
31. सु०नि०अ० – 1/79
32. डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चरक संहिता 90/11, पृष्ठ 390
33. डॉ० राकेश गिरि, स्वस्थवृत्त विज्ञान, पृष्ठ 266–267
34. चरक संहिता (द्वितीय भाग) चिकित्सा स्थान – 28/37
35. डॉ० राकेश गिरि, स्वस्थवृत्त विज्ञान, पृष्ठ 267–268
36. वही, पृष्ठ 268
37. डॉ० विनय कुमार, रोग विज्ञान, पृष्ठ 225
38. गीता – 6/17
39. योगसूत्र – 2/33
40. हठप्रदीपिका – 2/21
41. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध, पृष्ठ 17
42. हठप्रदीपिका – 2/50
43. हठप्रदीपिका – 2/65
44. हठप्रदीपिका – 2/52, 53
45. घेरण्ड संहिता – 5/45
46. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, योग निद्रा, पृष्ठ 1
47. डॉ० राकेश गिरि, स्वास्थ्यवृत्त विज्ञान, पृष्ठ 270–274

*x*x*x*x*x*x*x*x*x*x*x*x*x*x*x*x*x*x*x*x*x*x*x*x*x*x*x*x*x*x*x*